खून की पंखुड़ियाँ

न्युगी वा थ्योंगो

अनुवाद

आनन्द स्वरूप वर्मा

खून की पंखुड़ियों

न्युगी वा थ्योंगो

अनुवाद

आनंद स्वरूप वर्मा

प्रस्तावना

'पेटल्स ऑफ ब्लड' की रचना प्रक्रिया के बारे में जिक्र करते हुए न्गुगी ने अपने निबन्ध संग्रह 'राइटर्स इन पॉलिटिक्स' में एक जगह लिखा है- ''इस उपन्यास के लेखन के दौरान यह देख कर मैं हतप्रभ रह गया कि केन्या की गरीबी की वजह कोई अन्दरूनी नहीं है- यह इसलिए गरीब है क्योंकि यहाँ की सारी सम्पदा का इस्तेमाल पश्चिमी जगत के विकास में हो रहा है। बात बहुत साफ है। पश्चिम जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, जापान और अमरीका द्वारा एक यूनिट पूँजी निवेश के बदले में साम्राज्यवादी बुर्जुवा हमारे यहाँ से दस यूनिट सम्पदा अपने देशों को ले जाता है। उनकी सहायता, उनके द्वारा दिया गया कर्ज और उनके द्वारा किया गया पूँजी निवेश एक ऐसे रासायनिक उत्प्रेरक का काम करते हैं जो केन्या की सम्पत्तिहरण की प्रक्रिया को तेज कर देते हैं- बेशक, इससे छिटक कर बाहर गिरने वाला अंश यहाँ मुट्ठीभर 'खुशकिस्मत' लोगों के हाथ आ जाता है। मैंने महसूस किया कि साम्राज्यवाद कभी भी किसी देश अथवा जनता का विकास नहीं कर सकता... 'पेटल्स ऑफ ब्लड' में मैं यही दिखाना चाहता था कि साम्राज्यवाद कभी भी हम केन्याइयों का या हमारे देश का विकास नहीं कर सकता। ऐसा करते समय मैंने भरसक केन्या के मजदूरों और किसानों की इस अनुभूति के प्रति ईमानदार रहने की कोशिश की जिसे उन्होंने 1895 से ही अपने संघर्षों के

जरिए प्रदर्शित किया है।''

इस उपन्यास के लिखने से पहले न्गुगी के तीन उपन्यास 'वीप नॉट चाइल्ड', 'ए रीवर बिट्वीन' और 'ए ग्रेन ऑफ व्हीट' प्रकाशित हो चुके थे और इन पर लेखक के नाम के रूप में जेम्स न्गुगी छपा था। न्गुगी का कहना है कि जिन दिनों वह प्राइमरी स्कूल में थे, उनके माँ-बाप ने उन्हें ईसाई धर्म में दीक्षित किया और उनका नाम जेम्स न्गुगी रखा गया। जब उन्होंने यह महसूस किया कि यह तो उपनिवेश का एक बोझ है, उन्होंने अपने नाम में से 'जेम्स' हटा दिया। लेखन के क्रम में ही जब उन्हें यह आभास हुआ कि उनकी अंग्रेजी में लिखी हुई पुस्तकें अफ्रीकी जनता के किसी काम की नहीं हैं तो फिर उन्होंने अंग्रेजी में लिखना बन्द कर दिया और अपनी स्थानीय गिकुयू भाषा में लिखने लगे। 'पेटल्स ऑफ ब्लड' अंग्रेजी में लिखा गया उनका आखिरी उपन्यास है। इसके बाद उनकी जो भी पुस्तकें दुनिया के सामने आयीं वे मूलत: गिकुयू में लिखी गयी हैं और फिर उनका अंग्रेजी में अनुवाद हुआ है।

न्गुगी का यह बहुचर्चित उपन्यास एक महाकाव्य की तरह है जो साम्राज्यवाद विरोधी साहित्य में एक शीर्ष स्थान पाने और वैचारिक रूप से अत्यन्त समृद्ध होने के साथ कलात्मकता की दृष्टि से भी बेहद सम्पन्न है। यह केन्याई जनता के संघर्ष का इतिहास है और इसे पढ़ते समय अगर शहरों तथा पात्रों के नाम हटा दिये जायें तो ऐसा लगता है गोया यह तीसरी दुनिया के ऐसे किसी भी देश की कहानी है जहाँ

उपनिवेशवादियों ने सत्ता हस्तांतरण तो कर दिया पर जनता अपनी मुक्ति के लिए तरसती रह गयी। किस तरह कानून, चर्च, शिक्षा व्यवस्था, समूचा तंत्र जनविरोधी सत्ताधारी वर्ग की सेवा में जुटा है और शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष कर रही जनता का किस तरह दमन जारी है- यह इस उपन्यास में बहुत तल्खी के साथ उभर कर आया है। इसके पात्र मुनीरा, वान्जा, अब्दुल्ला, करेगा आदि हमारे बीच के चरित्र हैं जो विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यास के अन्त में मजदूर नेता करेगा के विचार उसके नजरिये को साफ तौर पर सामने रख देते हैं-- ''वे मुझे गिरफ्तार करेंगे... उन्हें सन्देह है कि मैं कट्टर कम्युनिस्ट हूँ...। साम्राज्यवाद... पूँजीवाद... जमींदार... केंचुए। एक ऐसी व्यवस्था जिसने मोटी तोंद वाले ऐसे पिस्सुओं और खटमलों की फौज तैयार की जिनके जीवन का मुख्य उद्देश्य परजीविता और लोगों के मांस खाना ही रह गया है। इस व्यवस्था और इसके मुनाफाखोर देवताओं और इसके टुकड़खोर देवदूतों ने उसकी माँ का कब तक पीछा किया। ये परजीवी हमेशा मजदूर वर्ग के खून की माँग करेंगे। ये मुट्ठी भर लोग, जिन्होंने समूची धरती का दोहन किया है और भरपूर शोषण के लिए विदेशियों के सुपुर्द कर दिया है, लोगों का खून चूसते रहेंगे और उस समय भी राष्ट्रवाद तथा नस्ली एकता का पाखंडपूर्ण प्रवचन देते रहेंगे जब हड्डियों के कंकाल गुमनाम कब्रों में घूमते होंगे। इस व्यवस्था और इसके देवताओं और देवदूतों के खिलाफ सचेत ढंग से लड़ाई चलानी होगी...और यह लड़ाई देश के सभी मेहनतकशों

को आगे बढ़ानी होगी। कोइटाले से लेकर किमाथी तक मजदूरों, छोटे व्यापारियों और छोटी जोत के किसानों की मदद से व्यापक किसान समुदाय ने इस लड़ाई की रूपरेखा तैयार की है। कल इस संघर्ष का नेतृत्व मजदूर और किसान करेंगे और उस व्यवस्था का तख्ता पलट देंगे जो खून के प्यासे देवताओं और देवदूतों की हिफाजत के लिए बनी हुई है और जो नरभक्षियों को भी संरक्षण दे रही है। केवल तभी सही अर्थों में मानव समुदाय के राज्य की स्थापना होगी जिसमें रचनात्मक श्रम में लगे लोग आजादी का स्वाद चख सकेंगे...''

इस उपन्यास के प्रकाशन के बाद न्गुगी के खिलाफ केन्या के तत्कालीन राष्ट्रपति जोमो केन्याटा की सरकार सक्रिय हो गयी। उन्हीं दिनों न्गुगी ने गिकुयू भाषा में एक नाटक 'न्गाहिका नदीन्दा' (आई विल मैरी व्हेन आई वाँट) लिखा था और इसका मंचन परम्परागत रंगकर्मियों से न करा कर स्थानीय किसानों और मजदूरों से कराया था। यह मंचन बेहद सफल रहा और इसमें केन्या में आजादी के बाद राष्ट्रीय स्तर पर उभरे पूँजीपतियों द्वारा किये जा रहे शोषण का अत्यन्त यथार्थवादी ढंग से चित्रण किया गया था। देश की सुरक्षा एजेंसियाँ इस नाटक की एक प्रति तथा 'पेटल्स ऑफ ब्लड' की एक प्रति के साथ जोमो केन्याटा से मिलीं और उन्हें समझाया कि यह लेखन कितना खतरनाक है। केन्याटा की पुलिस ने न्गुगी को गिरफ्तार कर लिया, नाटक के मंचन पर प्रतिबन्ध लगा दिया और उस थिएटर को ध्वस्त कर दिया जहाँ

इसका मंचन हो रहा था। (जेल में बिताये उनके अनुभवों का विवरण उनकी पुस्तक 'डिटेण्ड: ए राइटर्स प्रिजन डॉयरी' में उपलब्ध है।) न केवल अपने इस उपन्यास और इस नाटक द्वारा बल्कि अन्य उपन्यासों के जरिये भी न्गुगी ने पाठकों को यह बताने की कोशिश की कि किस तरह ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी माऊ माऊ आन्दोलन (जो मूलत: किसान आन्दोलन था) के नायक सत्ता हस्तांतरण के बाद बदहाल होते चले गये और जिन लोगों ने उस आन्दोलन की मुखबिरी की थी और अंग्रेजों की मदद की थी वे तथाकथित आजादी के बाद नयी सरकार के कृपापात्र हो गये।

1986 में न्गुगी का एक और उपन्यास 'मातीगारी' प्रकाशित हुआ। यह गिकुयू भाषा में था। इसके प्रकाशन के बाद भी वही स्थिति हुई जो 'आई विल मैरी व्हेन आई वांट' नाटक के दौरान देखने में आई थी। 'मातीगारी' की सारी प्रतियाँ दुकानों और प्रकाशक के गोदाम पर छापा मार कर जप्त कर ली गयीं।

'मातीगारी' के प्रकाशन के बाद केन्या में अजीबोगरीब घटनाएँ हुईं। इस उपन्यास का नायक मातीगारी मा न्जारूंगी (जिसका शाब्दिक अर्थ है वह देशभक्त जिसने गोलियाँ झेली हों) अपने दुश्मनों-एक गोरे बाशिंदे और उसके दलाल एक काले केन्याई का सफाया करने के बाद वापस अपने गाँव लौटता है। वह देखता है कि आजादी मिल चुकी है। यह सोच कर उसने अपने हथियार फेंक दिये और सुख शान्ति की जिन्दगी जीने के इरादे से गाँव में रहना तय किया। उसे यह देख कर बहुत हैरानी हुई

कि कुछ सतही तब्दीलियों- मसलन गोरे शासकों के स्थान पर काले अफसर की नियुक्ति-- के अलावा कोई खास फर्क नहीं पड़ा है। वह लगभग अर्द्धविक्षिप्त अवस्था में देशभर में घूमता है और लोगों से सच्चाई तथा न्याय के बारे में सवाल पूछता है। जिन लोगों ने इस उपन्यास को पड़ा वे मातिगारी के बारे में एक दूसरे से चर्चा करने लगे और आपसी बातचीत में वही सवाल दुहराने लगे जिन्हें मातीगारी लोगों से पूछता था। एक बातचीत में न्गुगी ने बताया कि स्थिति यह हो गयी कि मातीगारी को लोग औपन्यासिक चरित्र न मानकर वास्तविक चरित्र मानने लगे। यहाँ तक कि राष्ट्रपति अरप मोई की सरकार ने मातीगारी की गिरफ्तारी का आदेश जारी कर दिया। पुलिस को जब पता चला कि यह कोई व्यक्ति नहीं बल्कि उपन्यास का एक पात्र है तो सरकारी स्तर पर और भी ज्यादा बौखलाहट बढ़ी। इसी का नतीजा था कि फरवरी, 1987 में मातिगारी की प्रतियाँ न केवल दुकानों और गोदामों से बल्कि लोगों के घरों पर छापे डाल कर भी जब्त की गयीं। अब यह उपन्यास केन्या से बाहर के पाठकों के लिए अंग्रेजी में भी उपलब्ध है। उपन्यासकार न्गुगी के साथ ही उसका पात्र मातीगारी भी निर्वासित जीवन बिताने के लिए अभिशप्त हो गया।

अप्रैल 1989 में मैं केन्या और जिम्बाब्वे की यात्रा पर गया था। इराक में मैंने पुस्तकों की अनेक दुकानों के चक्कर लगाये। उस समय तक न्गुगी की कम से कम सात पुस्तकें गिकुयू और किस्वाहिली भाषा में प्रकाशित हो चुकी थीं। मैंने

उत्सुकतावश जानना चाहा कि इन भाषाओं में प्रकाशित कोई पुस्तक उपलब्ध है या नहीं। मुझे बच्चों के लिए लिखी केवल एक पुस्तक दिखाई दी। मेरी कुछ बुद्धिजीवियों से बात हुई जो न्गुगी के साहित्य और उनके संघर्ष से परिचित थे। उन लोगों का कहना था कि गिकुयू अथवा किस्वाहिली में लिखी न्गुगी की पुस्तकें केन्या में तो नहीं मिल सकतीं- हो सकता है उगांडा अथवा तंजानिया में मिल जायें।

'पेटल्स ऑफ ब्लड' का प्रकाशन 1977 में हुआ था। उपन्यास के केन्द्र में चार प्रमुख पात्र- मुनीरा, करेगा, वान्जा और अब्दुल्ला हैं। देश के दो बड़े व्यापारियों और एक शिक्षाविद की हत्या के इर्द-गिर्द पूरी कहानी घूमती है। मुनीरा एक स्कूल टीचर है जो अपने सम्पन्न माँ-बाप से अलग होकर इलमोरोग नामक एक छोटे कस्बे में बच्चों को पढ़ाता है। अब्दुल्ला एक दुकानदार है जो किसी जमाने में माऊ माऊ आन्दोलन का योद्धा था और संघर्ष में अपना एक पैर गँवा चुका था। वान्जा एक बारमेड है जो बाद में वेश्या हो जाती है। करेगा एक उत्साही नौजवान है जो शुरू में मुनीरा के स्कूल में पढ़ाने का काम करता है और फिर आगे चलकर मजदूरों को संगठित करने में लग जाता है। किमेरिया, चुई और नदेरी वा रेरा सत्ता से जुड़े हुए लोग हैं जिन्होंने आजादी की लड़ाई में कभी हिस्सा नहीं लिया लेकिन नये केन्या का सारा लाभ वे उठा रहे हैं। समूचा उपन्यास नवउपनिवेशवाद की चपेट में पड़े केन्या की एक दर्दनाक तस्वीर पेश करता है। न्गुगी के अन्य उपन्यासों की तरह इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में भी माऊ माऊ

आन्दोलन है जो मूलत: किसान आन्दोलन था और जिसने अंग्रेजों को केन्या छोड़ने के लिए विवश किया था। इस आन्दोलन के प्रमुख किसान नेता देदान किमाथी का सन्दर्भ कई स्थलों पर उपन्यास में मिलता है। देदान किमाथी को अंग्रेजों ने मौत की सजा दे दी। न्गुगी ने किमाथी के जीवन पर एक नाटक भी लिखा है जिसका शीर्षक है —'दि ट्रायल ऑफ देदान किमाथी'। एक इंटरव्यू में न्गुगी ने बताया था कि किस तरह न केवल अपने हथियारों से ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने इस आन्दोलन का दमन किया बल्कि इसके खिलाफ उन्होंने भाषा के हथियार का भी इस्तेमाल किया। न्गुगी का कहना है कि ''अंग्रेजों ने इस आन्दोलन का नाम माऊ माऊ दिया क्योंकि इस शब्द का कोई अर्थ ही नहीं है। इस नामकरण के साथ वे इस आन्दोलन को भी एक अर्थहीन आन्दोलन बतलाना चाहते थे। इस आन्दोलन से जुड़े योद्धा अपने आन्दोलन को 'भूमि और मुक्ति सेना' कहते थे लेकिन अगर इस नाम को प्रचारित किया जाता तो इससे आन्दोलन की अर्थवत्ता प्रकट होती।' इस आन्दोलन में न्गुगी के एक भाई की भी जान गयी थी और उनकी माँ को भी तीन महीनों तक जेल में रहना पड़ा था।

भाषा के प्रश्न पर न्गुगी ने काफी कुछ लिखा है। उनके लेखों का एक संकलन 'डी कोलोनाइजिंग द माइंड' 1986 में प्रकाशित हुआ। इसका उपशीर्षक था 'अफ्रीकी साहित्य में भाषा की राजनीति'। इसमें उनके चार महत्त्वपूर्ण लेख थे- 'अफ्रीकी साहित्य की भाषा', 'अफ्रीकी थिएटर की भाषा', 'अफ्रीकी कथा साहित्य की भाषा'

और 'प्रासंगिकता की तलाश'। न्गुगी का मानना है कि साम्राज्यवाद हथियारों से हमला करने से पूर्व सांस्कृतिक आक्रमण करता है जो उपनिवेशों की जनता की संस्कृति के खिलाफ लम्बे समय तक जारी रहता है। नव-औपनिवेशिक स्थितियों में यह सांस्कृतिक हथियार और भी तेजी से काम करता है ताकि इसके जरिये नया शासक वर्ग, जो एक दलाल पूँजीपति की भूमिका निभाता है, अपने भूतपूर्व औपनिवेशिक शासकों के हितों की रक्षा करने वाली मानसिकता का निर्माण कर सके। भाषा और संस्कृति के सवाल पर न्गुगी के विचार पश्चिम अफ्रीकी देश गिनी बिसाऊ के मुक्ति आन्दोलन के नेता अमिल्कर कबराल से काफी मिलते हैं। प्राय: न्गुगी ने अपने लेखों में कबराल का उल्लेख किया है। कबराल का मानना है कि साम्राज्यवादी प्रभुत्व जब गुलाम देश की जनता के ऐतिहासिक विकास को नकारता है तो वह बुनियादी तौर से उसके सांस्कृतिक उत्पीड़न का सहारा लेता है। इस प्रक्रिया में वह शासित लोगों की संस्कृति के मूल तत्त्वों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पूरी तरह नष्ट कर देने का प्रयास करता है। इसलिए कबराल का कहना है कि राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष शुरू होने से पहले आमतौर पर संस्कृति के क्षेत्र में अभिव्यक्ति के विविध रूप दिखाई पड़ने लगते हैं और उत्पीड़क देश की संस्कृति को नकारते हुए अपनी खुद की सांस्कृतिक पहचान स्थापित करने का सफल अथवा असफल प्रयास बहुत तेज हो जाता है। 'दरअसल संस्कृति में ही प्रतिरोध के वे बीज छिपे हैं जो आगे चलकर मुक्ति

आन्दोलन के निर्माण और विकास में सहायक होते हैं।' इसी क्रम में उनका कहना है कि अगर साम्राज्यवादी शासन के लिए यह जरूरी है कि वह सांस्कृतिक उत्पीड़न करे तो राष्ट्रीय मुक्ति के लिए भी यह जरूरी है कि वह मुक्ति आन्दोलन को एक सांस्कृतिक कर्म समझे। इसलिए यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन संघर्ष कर रही जनता की संस्कृति की संगठित राजनीतिक अभिव्यक्ति है।

1999 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दिये एक भाषण में न्गुगी ने भारत अंग्रेजों की सामाजिक प्रयोगशाला बताते हुए कहा कि इस प्रयोगशाला से निकले नतीजों का उन्होंने अन्य उपनिवेशों में निर्यात किया। इस सन्दर्भ में वह मैकाले द्वारा शुरू की गयी शिक्षा पद्धति का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इसका मकसद 'व्यक्तियों का एक ऐसा समूह पैदा करना था जो रंग-रूप में तो भारतीय हो लेकिन अपनी रुचियों, विचारों, नैतिक मूल्यों और मेधा में अंग्रेज हो।' इसके ठीक 87 वर्ष बाद केन्या के तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर सर फिलिप मिशेल ने मैकाले की इन्हीं नीतियों का अनुसरण किया। उन्होंने माऊ माऊ छापामार सेना के विरुद्ध सशस्त्र अभियान को मजबूती देने के लिए एक नैतिक अभियान चलाने के रूप में अफ्रीकी शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व की नीति तैयार की और उन्होंने देखा कि इस नयी भाषा की शिक्षा से एक ऐसे 'सभ्य राज्य' का निर्माण हो सकेगा 'जिसमें सभी मूल्य और मानक वही होंगे जो ब्रिटेन के हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की, चाहे उसका मूल कुछ भी हो, दिलचस्पी होगी

और वह इसका एक अंग होगा।'

मैकाले .और मिशेल की समानता को दिखाते हुए न्गुगी ने टिप्पणी की है- ''दोनों मामलों में यानी 19वीं शताब्दी के मैकाले के भारत में और 20वीं शताब्दी के मिशेल के केन्या में सन्दर्भ औपनिवशिक था और लक्ष्य बहुत स्पष्ट थे। जिस प्रकार सैनिक क्षेत्र में औपनिवेशिक शक्तियों ने एक देशज सेना का निर्माण किया था जिसे उन्होंने शेष जनता से अलग-थलग कर दिया था और जो उन्हीं ताकतों का साथ दे रही थी जिन्होंने उन्हें गुलाम बनाया था, उसी प्रकार मस्तिष्क के क्षेत्र में भी किया गया- शासित लोगों के बीच से एक बौद्धिक सेना का निर्माण जो आम लोगों से अलग-थलग हो और शासकों की मदद करे। आप खुद के लिए न होकर दूसरे के लिए होने की अवस्था में पहुँच जायें और इस प्रकार अपने खुद के अस्तित्व के खिलाफ खड़े हो जायें।''

न्गुगी वा थ्योंगो के लेखों और उपन्यासों को पढ़ते समय ऐसा नहीं लगता कि आप केन्या के बोरे में पढ़ रहे हैं। उनकी स्थापनाएं न केवल केन्या पर बल्कि भारत जैसे तीसरी दुनिया के किसी भी देश पर सटीक बैठती हैं जहाँ का शासकवर्ग आज अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व व्यापार संगठन तथा इनके द्वारा पोषित बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों देश को गिरवी रखने में तनिक भी संकोच नहीं कर रहा है, जहाँ एक खास तरह का फासीवाद सिर उठा रहा है और जहाँ एक ऐसी संस्कृति को प्रश्रय

दिया जा रहा है जो हमारी प्रतिरोध क्षमता को पूरी तरह नष्ट कर दे।

आनन्द स्वरूप वर्मा

दिसम्बर 2017